द्वितीय अध्याय II पृष्ठ 33-60

"भूले बिसरे चित्र' उपन्यास की कथावस्तु"

* * *

भूले बिसरे चित्र उपन्यास की संक्षिप्त कथावस्तु :

'भूले बिसरे चित्र' एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसकी पटभूमि विस्तृत है। सन 1885 से सन 1930 तक के लगभग पचास वर्ष के भारतीय इतिहास की झाँकी इसमें मिलती है। उपन्यास में एक मध्यवर्गीय कायस्थ परिवार की चार पीढ़ियों की कथा है; जिसने सामन्तीय जीवन को टूटते, मध्यवर्ग को पनपते और अन्त में मध्यवर्गीय धारणाओं के -ास का आरम्भ होते देखा और युगपरिवर्तनों के परिणामों को झेला है। परिवर्तित परिस्थितियों में एक परिवार पर क्या-प्रभाव पड़ता है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके स्वभाव, मनोवृत्ति और आचरण में क्या अन्तर आता है, इसका कलात्मक चित्रण इस उपन्यास में उपस्थित है।

किसी भी उपन्यास की कथावस्तु उसका शरीर होता है। कथानक के बिना उपन्यास का अस्तित्व न के बराबर होता है। इसलिए उपन्यास में कथावस्तु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। 'भूले बिसरे चित्र' के कथानक का अनुशीलन करने से पहले उसकी संक्षिप्त कथावस्तु को देखना अनिवार्य हो जाता है।

पहला खण्ड :

मुंशी शिवलाल फतहपुर की कलक्टरी की अदालत के हाते में अर्जीनवीस हैं। वे खुशामदखोरी एवं अपने कलम के बल पर पुत्र ज्वालाप्रसाद को जिला कानपुर, तहसील घाटमपुर में नायब तहसीलदारी पर नामजद करवाने में सफल होते हैं। मुंशी शिवलाल परंपरावादी हैं, संयुक्त - परिवार - प्रथ में उनकी आस्था है। घसीटे उनका सेवक है और उसकी पत्नी छिनकी उनके घर टहल करती है जिसके साथ विधुर मुंशी शिवलाल का अवैध यौन - सम्बन्ध है।

ज्वालाप्रसाद पत्नी यमुना और घसीटे के लड़के भीखू को साथ लिए घाटमपुर चला जाता है। ज्वालाप्रसाद एक ईमानदार अफसर है। चार्ज लेने के कुछ दिन पश्चात् ही वह न चाहते हुए भी प्रभुदयाल और बरजोरसिंह के संघर्ष के बीच आता है है। बरजोरसिंह ने अपनी खुदकाश्त एक हजार रूपये में प्रभुदयाल के पास रेहन रखी थी। कर्ज बढ़ते बढ़ते पाँच सालों में दो हजार हो गया था। एक दिन गजराजसिंह के बेटी के विवाह के अवसर पर बरजोरसिंह प्रभुदयाल को लक्ष्य करके कहता है - "अरे राज-खानदान के हैं, कोई बनिया - बक्कर थोडे ही हैं"[1] प्रभुदयाल को यह बात अवमानजक लगती है और अपमान का बदला चुकाने के लिए वह बरजोरसिंह पर मुकदमा दायर करता है और जीत भी जाता है। उसके डिग्री का जितना रूपया (कुल दो हजार) था उतने पर ही बरजोरसिंह की खुदकाश्त खरीद लेता है। दोनों में संघर्ष बढ़ता जाता है, ज्वालाप्रसाद दोनों

में समझौता करने की लाख कोशिश करता है किन्तु अन्त में असफल होता है। आखिर बरजोरसिंह प्रभुदयाल का खून करता है।

ज्वालाप्रसाद जिला मॉजेस्ट्रेट के सामने बरजोरसिंह के खिलाफ अपना बयान देता है। उसके बयान पर बरजोरसिंह के खिलाफ वारण्ट निकलता है किन्तु वह वारण्ट की खबर सुनते ही आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार दोनों के संघर्ष की परिणति एक - दूसरे की हत्या और आत्महत्या में परिणत होती है।

प्रभुदयाल के मृत्यू के पश्चात ज्वालाप्रसाद विधवा जैदेई के अधिक सम्पर्क में आ जाते हैं। जैदेई उन्हें देवता समझती है। दोनों में अवैध यौन रिश्ता बँध जाता है। ज्वालाप्रसाद की हर बात उसके लिए पत्थर की लकीर बन जाती है। जैदेई के नाम बरजोरसिंह की जमीन की दाखिल - खारिज हो जाती है। गजराजसिंह के कहने पर ज्वालाप्रसाद जैदेई द्वारा उस जमीन की फसल बरजोरसिंह की बेवा को काट लेने की अनुमति दिलवाता है इतना ही नहीं वह जमीन जैदेई से बरजोरसिंह की बेवा को वापस दिलवाने में भी वह सफल होता है।

'ज्वालाप्रसाद ने बरजोरसिंह की बेवा को सौ अशर्फियाँ दी हैं यह बात सुनकर तहसीलदार मीर सखावत हुसेन उसके प्रति शंकित होते हैं और ज्वालाप्रसाद की पुष्टी के बावजूद भी वे उसका तबादला इलाहाबाद के सोरॉव गाँव में तहसीलदार की हैसियत से करते हैं। मुन्शी शिवलाल भी उसके प्रति गंभीर होते हैं क्यों कि वे जानते थे कि उनका लड़का रिश्वत नहीं लेता। ज्वालाप्रसाद के रहस्योद्घाटन से कि 'वह अशर्फियाँ जैदेई ने बरजोरसिंह की बेवा को दिलाने के लिए उन्हें दिए थे'- वे प्रसन्न होते हैं। इस पर वे ज्वालाप्रसाद को नेक सलाह देते हैं- "ज्वाला बेटा, तुम्हारी किस्मत खुल गई। बहुत तगड़ा शिकार फँस गया है। अब आगे के लिए कसम खा लो कि तुम इस तरह दूसरों को रुपया न दिलवाओगे। अपने लिए जमीन-जायदाद इकट्ठा कर लो। लम्बरदारेन जैदेई के पास नकद और जेवर मिलाकर लाखों की जमा-जथा है।'[2]

दूसरा खण्ड :

मुंशी शिवलाल के भाई राधेलाल और उसकी पत्नी अपने बेटे किशनलाल के घर से भाग जाने के सिलसिले में सोरॉव आते हैं। राधेलाल अपने भाई को घर के प्रबंध के बारे में विस्तृत जानकारी देते हैं। उनके बेटे श्यामलाल ने रहीमपुर मौजे का आठ आना हिस्सा गफूर मियाँ की बेवा सलीमा की सेवा करते हुए धोखाधडी एवं जालसाजी से अपने नाम कर लिया था। गफूर मियाँ के दामाद रहमत खाँ ने श्यामलाल के खिलाफ मुकदमा दायर किया था। उसका कहना था कि श्यामलाल ने

सलीमा को अफीम खिलाकर उसके नशे के हालत में यह सब लिखवा लिया है । मुन्शी राधेलाल शिवलाल से कहते हैं कि, 'अगर ज्वालाप्रसाद इस मामले में सब-जज पण्डित गिरिजाशंकर पर जोर दे तो मुकदमा जीता-जिताया है । इस तरह रहीमपुरा मौजे का आठ आना हिस्सा खानदान का हो गया और बाकी आठ आना हिस्सा जो कयूम मियाँ का है, उसे सस्ते में खरीदा जा सकता है क्यों कि कयूम मियाँ उसे बेचकर हज पर जाना चाहते हैं ।' मुन्शी शिवलाल चाहते हैं कि उनके खानदान में जमीन-जायदाद होनी चाहिए इसलिए वह राधेलाल के प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं । किन्तु ज्वालाप्रसाद एक ईमानदार अफसर होने के कारण इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है ।

मुंशी शिवलाल फतहपुर के श्यामलाल और रहमत खाँ वाले मुकदमें के सिलसिले में बात करने सब - जज गिरिजाशंकर के पास जाते हैं किन्तु गिरिजाशंकर उनकी बनावटी बातों पर विश्वास नहीं करते । वे मुंशी शिवलाल से कहते हैं कि, अगर ज्वालाप्रसाद यह कह दें कि उन्होंने सलीमा को रूपये दिए हैं तो वे रहमत खाँ का मुदकना खारेज कर देंगे । घर आकर मुंशी शिवलाल ज्वालाप्रसाद से कहते हैं कि 'वह गिरिजाशंकर से यह झूट कह दे कि उसने श्यामलाल को जमीन - जायदाद खरीदने के लिए रूपये दिए थे ।' किन्तु ज्वालाप्रसाद अपनी ईमानदारी पर अड़ जाता है तो वे यह कहते हुए कि, "ले, तेरी ईमानदारी और सच्चाई पर मैं बलि होता हूँ ।" दोनों हाथों से जोर लगाकर भरी हुई सुराही अपने सिर पर पटक लेते हैं और इसी में उनकी मृत्यु होती है ।

मुंशी शिवलाल के मृत्यु के बाद राधेलाल का पूरा परिवार ज्वालाप्रसाद के घर में एकत्रित होता है । ज्वालाप्रसाद को अपने परिवार से ममता - मोह है किन्तु सोरॉव आकर वे सब-के-सब कामचोर और निठल्ले बनते हैं और ज्वालाप्रसाद के कमाई पर गुलछर्रे उडाते हैं । ज्वालाप्रसाद को यह सब अच्छा नहीं लगता ।

इधर जैदेई को पिछले दो सालों से जूड़ी आ रही थी । सभी ईलाज नाकाम हो रहे थे किन्तु उसकी तबीयत में कोई सुधार नहीं हो रहा था । वह डाक्टरी ईलाज करवाने को तैयार नहीं थीं । किन्तु ज्वालाप्रसाद के कहने पर वह राजी होती है । जैदेई उन्हें किशनलाल की करतूतों के बारे में बताती है । किशनलालने एक दिन लक्ष्मीचन्द की पत्नी को शराब में भांग मिलाकर पिला दिया था और उसके साथ जबरदस्ती करने की कोशिश की थी । इसके कारण लक्ष्मीचन्द ने उसे गुंडों से बुरी तरह पीटा था । इस प्रसंग से ज्वालाप्रसाद के मन में अब निश्चित रूप से अपने परिवारवालों के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा पैदा हो गई थी । वे जैदेई के यहाँ से वापस आते ही

रामलाल को जो दूसरी नौकरी ठकुर वीरभानसिंह की कृपा से मिल रही थी, उसे रूकवाते हैं । इसी बिच उन्हे देवीदयाल सर्राफ से यह पता चलता है कि रामलाल ने उनके यहाँ से कितने गहने बनवाये हैं । ज्वालाप्रसाद जब गहनों की रकम रामलाल से माँगते हैं, तो राधेलाल कहते हैं कि रामलाल यह रकम सालभर में चुकाएगा । आखिर इन समस्त परेशानियों से मुक्ति पाने के लिए अपना समस्त साहस बटोरकर ज्वालाप्रसाद राधेलाल को परिवार के साथ फतहपुर वापस जाने को कहते हैं । इस पर राधेलाल क्रोध में आपे से बाहर हो जाते हैं और ज्वालाप्रसाद को अनाप-शनाप बकने लगते हैं । आखिर उन्हें अपनी गलतियों का अहसास हो जाता है और अपने परिवार के साथ वे फतहपुर रवाना होते हैं । उनके चले जाने से ज्वालाप्रसाद के परिवार में फिर से शांति स्थापित होती है ।

गंगाप्रसाद अब छठे दर्जे में पहूँचा था । ज्वालाप्रसाद के सामतने उसकी अगली बढ़ाई की समस्या थी क्यों कि सोरॉव में अंग्रेजी की शिक्षा सिर्फ छठे दर्जे तक ही हो सकती थी । ज्वालाप्रसाद उसकी अगली पढ़ाई का भार जैदेई पर सौंप देते हैं और यहीं पर दूसरा खण्ड समाप्त होता है ।

तीसरा खण्ड :

गंगाप्रसाद के 'बी.ए.' उत्तीर्ण कर लेने के तुरन्त बादही उसे सीधे नायब-कलक्टरी पर नामजद कराया जाता है । चार्ज लेने के कुछ दिन पश्चात् ही उसे दिल्ली दरबार का इन्तजाम करनेवाली कमेटी में चुना जाता हैं । दिल्ली जाते समय जैदेई उसे एक हजार रूपया नकद और एक हीरे की अंगूठी भेंट करती है क्योंकि जैदेई उसके अनाप-शनाप खर्चे से भले - भाँति परिचेत है । जैदेई उसे हमेशा खुश देखना चाहती है, वह उसे अपनाही पुत्र मानती है ।

दिल्ली जाते समय रेल में ही गंगाप्रसाद का परिचय लाल रिपुदमनसिंह और राधाकिशनसे होता है । दिल्ली में कुछ दिन वह राधाकिशन के बँगले में ही रहता है । राधाकिशन की पत्नी सतवंती के प्रति वह आकर्षित होता है और वह आकर्षण अवैध यौन रिश्ते में बदल जाता है । लाल रिपुदमनसिंह गंगाप्रसाद को अपनी पत्नी और उसके प्रेमी की हत्या की संपूर्ण कथा सुनाता है । उसके पत्नी का शिवप्रताप नाम के एक सेक्रेटरी से अनैतिक रिस्ता स्थापित हो गया था । दोनों ने मिलकर लाल रिपुदमनसिंह को मार डालने का जाल रचा था । किन्तु जब राज खुल जाता है तो लाल रिपुदमनसिंह उन दोनों की हत्या कर देता है ।

जैदेई का पुत्र लक्ष्मीचन्द अपना कारोबार बुरी तरह फैला चुका था । सरकार में उसकी

अच्छी पहुंच थी । उसने एक कपड़े की, एक चीनी की और दो तेल की मिलें कानपुर में तथा इलाहाबाद में एक लकडी का बहुत बड़ा कारखाना खोल दिया था । उसने दिल्ली दरबार के लिए पचास हजार रूपये का चन्दा दिया था जिसके फलस्वरूप उसे 'सर' की उपाधि मिली थी । इस उपलक्ष्य में कानपुर में उसका बहुत बड़ा जुलूस निकाला जाता है ।

गंगाप्रसाद दिल्ली दरबार से लौटता है । इन दिनों बरेली में आर्य समाज का प्रथम अधिवेशन बड़ी धूम-धाम से हो रहा था । स्वामी जाटेलानंद ने विभिन्न धर्मान्धों को शास्त्रार्थ की चुनौती देदी थी और उस चुनौती को अल्लामा बहशी ने स्वीकार किया था । शास्त्रार्थ के अवसर पर बड़ी संख्या में लोग इकठ्ठे होते हैं । धर्म को लेकर काफी वाद-विवाद होता है किन्तु अंग्रेजों की पक्षपाती नीति को देख स्वामी जाटेलानंद शास्त्रार्थ छोड चले जाते हैं और शास्त्रार्थ समाप्त हो जाता है ।

गंगाप्रसाद सात दिन की छुट्टी लेकर फिर एक बार संतो से मिलने चला जाता है । उसके पिता राधाकिशन को 'राजाबहादुर' का किताब मिला था, जिसके पिछे उसका बहुत बड़ा हाथ था । संतो अब पहले वाली सतवंती नहीं रही थी । अब तक उसका बुरी तरह से पतन हो चुका था । अनेक व्यक्तियों के साथ उसका अवैध रिश्ता हो गया था । उसका अनेकों से रिश्ता भावात्मक न होकर आर्थिक बन गया था । आखिर संतो से ऊबकर गंगाप्रसाद वापस आता है । इधर जैदेई अन्तिम साँसे ले रही थी - मानों वह गंगा को देखने भर के लिए जीवित थी । वह मरने से पहले अपनी जमा-जथा गंगा को भेंट करना चाहती है किन्तु लक्ष्मीचन्द उसे ऐसा करने नहीं देता । वह जैदेई के हाथ से तिजोरी की चाभी छीन लेता है और अपनी माँ को गालियाँ देता है । जैदेई यह सब सहन नहीं कर पाती और वह ज्वालाप्रसाद के सामने अपना दम तोड़ देती है ।

चौथा खण्ड :

इस खण्ड का आरम्भ ज्ञानप्रकाश जो बॅरिस्टरी पढ़ने इंग्लैण्ड गया था उसके भारत लौटने से होता है । ज्ञानप्रकाश ज्वालाप्रसाद के मामा रामसहाय का द्वितीय पुत्र था । उन्ही दिनों पंजाब में जालियाँवाला बाग हत्याकान्ड हुआ था और अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन हो रहा था । यह अधिवेशन देखने ज्ञानप्रकाश गंगाप्रसाद को साथ लिए अमृतसर चला जाता है । रेल सफर में उनका परिचय ब्रिटीश पालमिंट के सदस्य विलियम ग्रिफिथ्स और फादर बार्टोनो से होता है ।

पिछले दिनों जौनपुर में मुसलमानों की एक बहुत बड़ी सभा हुई थी और उसमें खिलाफत समस्या को लेकर बड़े उत्तेजनापूर्ण भाषण हुए थे । गंगाप्रसाद को सिटी-मॅजिस्ट्रेट का भी

उत्तरदायित्व सौंपा गया था । उसी दिन गंगाप्रसाद ने कलक्टर के आदेशानुसार तीन नेताओं के खिलाफ वारण्ट निकालकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया था और उनकी जमानत रद्द करवाई थी । ये तीन नेता थे - मिस्टर फरहतुल्ला, शेख अब्बर और मौलाना दाऊद । ज्ञानप्रकाश उनकी जमानत मंजूर करवाने में सफल होता है ।

कुछ दिन पश्चात् छिन्नकी की मृत्यु होती है । गंगाप्रसाद का चरित्र दिन - प्रति - दिन गिरता जाता है । हाल ही में उसका मलका नामक वेश्या से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था । गंगाप्रसाद के चारित्रेक कमजोरियों की चर्चा स्थानीय अफसरों के दायरे से निकल कर प्रान्तीय अफसरों के दायरे में होने लगी थी । जब भीखू ज्वालाप्रसाद के सामने उसका भण्डा फोड देता है तो ज्वालाप्रसाद अपने परिवार के साथ गंगाप्रसाद के पास जौनपुर चले जाते हैं । उनके जौनपुर जाने पर गंगाप्रसाद की हालत काफी सुधर जाती है ।

पूरे देश में अंग्रेज सरकार के खिलाफ आवाजें उठने लगी थीं । आन्दोलन चल रहा था, हडतालें हो रही थीं, चरखा चलाया जा रहा था, खादी और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था, विदेशी मालों का बहिष्कार किया जा रहा था । इस प्रकार पुरे देश में असहयोग आन्दोलन चल रहा था । जौनपुर में आन्दोलन को दबाने की जिम्मेदारी कलक्टर ने गंगाप्रसाद को दे दी थी और वह निर्दयतापूर्वक अपनी जिम्मेदारी निबाह रहा था । गंगाप्रसाद को हर एक आन्दोलन को दबाने में सफलता मिलती जाती थी । इस प्रकार अंग्रेजों से वफादार रहने के परिणामस्वरूप उसका तबादला जौनपुर से कानपुर में हो गया था - स्थानापन्न ज्वाइंट मॅजिस्ट्रेट की हैसियत से । वह उसी दिन चार्ज लेने कानपुर चला जाता है । उस बीच गंगाप्रसाद और पूंजीपति लक्ष्मीचन्द के बीच जो वितृष्णा पैदा हो गई थी वह समाप्त होती है फिर एक बार दोनों परिवारों में घनिष्ठता स्थापित होती है ।

मलका जो बनारस से अचानक गायब हो गई थी, अचानक ही एक दिन कचहरी में गंगाप्रसाद के सामने आती है । मलका अपनी सम्पूर्ण कहानी गंगाप्रसाद को बताती है । मलका अब माया शर्मा बन गई थी । उसने हिन्दु-धर्म स्वीकार करके सत्यव्रत नाम के एक ब्राह्मण कांग्रेस कार्यकर्ता से विवाह किया था ।

इस बीच चौरी-चौरा की हिंसक घटना घटित होती है और इस घटना के तुरन्त बाद गांधीजी सामूहिक सत्याग्रह वापस लेते हैं । 12 फरवरी को बारदोली में हुई सामूहिक सत्याग्रह की बैठक में गांधीजी का सामूहिक सत्याग्रह को स्थापित करने का प्रस्ताव पास हो जाता है । उसके तुरन्त

बाद गांधीजी की गिरफतारी होती है और उन्हें छः साल की सजा होती है।

मिस्टर हेरिसन इस बात से खुश था और उसने डिनर-पार्टी रखी थी जिसमें गंगाप्रसाद भी आमन्त्रित था। मिस्टर हेरिसन आवश्यकता से अधिक पीने के कारण अत्यधिक जोश में था, और गांधीजी को गालियाँ दे रहा था। गंगाप्रसाद को उसकी बातें पसंद नहीं आती और वह भी गुस्से में आकर हेरिसन को मुँहतोड़ जवाब देता है और दोनों के बीच हंगामा मच जाता है। अतिथि गण दोनों को रोक लेते हैं। स्पष्ट रुप से गलती हेरिसन की थी इसलिए अन्य अतिथियों के कहने पर वह गंगाप्रसाद से क्षमा मांगता है। किन्तु अपने इस अपमान का बदला चुकाने के लिए वह गंगाप्रसाद पर कांग्रेसी होने का लांछन लगाकर कमिश्नर के पास शिकायत करता है।

जब आन्दोलन समाप्त होता है तो गंगाप्रसाद को दूध की मक्खी की तरह उठाकर बाहर फेंक दिया जाता है। उसका तबादला एटा के डिप्टी कलक्टर की हैसियत से किया जाता है। यह पुरस्कार उसे एक अंग्रेज अफसर हेरिसन के मुँह लगने के परिणामस्वरुप मिल गया था। अंग्रेज सरकार की इस नीति से गंगाप्रसाद अशांति और घुटन महसूस करता है। बिना जाने हुए वह भावनात्मक रुप से ज्ञानप्रकाश के निकट आता जा रहा था। वह ज्ञानप्रकाश से अपने कांग्रेस में सक्रिय होने के सम्बन्ध में कहता है। दोनों मिलकर इस्तीफा लिख देते हैं और गंगाप्रसाद उसपर दस्तखत भी करता है। किन्तु मुलतान में हुई हिन्दू-मुस्लिम दंगे की खबर सुनते ही उसके अन्दर वाली कायरता और सोया हुआ अफसर जाग उठता है और वह अपना इस्तीफा फाड़ डालता है।

पाँचवाँ खण्ड :

इस खण्ड का आरम्भ नवल के 'बी.ए.' की परीक्षा देने से होता है। उसी दिन उसे ज्वालाप्रसाद का सन्देश मिलता है कि उसके पिता की हालत बहुत खराब है। गंगाप्रसाद की तबीयत कई दिनों से काफ़ी गिर गई थी। उसके दोनों फेफड़े खराब हो चुके थे। डाक्टरों के मतानुसार उसका ईलाज मिर्जापुर में नहीं हो सकता था। उसकी बीमारी से सारा परिवार चिंतित हो गया था। गंगाप्रसाद चाहता है कि उसके टूटने से पहले नवल बन जाए इसलिए वह नवल को 'आई.सी.एस.' बनने के लिए लन्दन भेजना चाहता है।

डा. शेरवूड गंगाप्रसाद को भुवाली सैनेटोरियम ले जाने की सलाह देते हैं। नवल अपने पिता की सेवा करने के लिए उनके साथ भुवाली जाने का दृढ़निश्चय करता है। ज्वालाप्रसाद और कामतानाथ नहीं चाहते कि नवल गंगाप्रसाद के साथ उस संक्रामक रोग के सैनेटोरियम में जाकर रहे कामतानाथ अपनी बेटी उषा का विवाह नवल से करना चाहते हैं इसलिए वे नवल को 'आई.सी.एस.'

के लिए लन्दन भेजना चाहते हैं। उनके लाख विरोध के बावजूद भी नवल अपने पिता के साथ जाने की पूरी तैयारी कर लेता है। किन्तु भुवाली जाने के पहले दिन ही गंगाप्रसाद की असामयिक मृत्यु हो जाती है।

अपने पिता की मृत्यु के बाद नवल अपने विलायत जाने का रव्वाब छोड़ देता है और 'एल-एल.बी.' की पढ़ाई करने लगता है। गंगाप्रसाद ने विद्या की शादी बिन्देश्वरीप्रसाद के लड़के सिध्देश्वरी के साथ पन्द्रह हजार रुपये में तय की थी। इस तरह उसके शादी पर कुल अठारह हजार का खर्चा आनेवाला था। परन्तु ज्वालाप्रसाद के पास कुल नौ-दस हजार ही थे फिर भी गंगाप्रसाद जो तय कर गया है वह नवल के लिए पत्थर की लकीर है। विद्या को भी यह शादी मंजूर नहीं है क्यों कि वह जानती है कि उसके शादी के बाद यह परिवार तबाह हो जाएगा। जैसे-जैसे शादी के दिन करीब आते जाते हैं वैसे ज्वालाप्रसाद की परेशानी बढ़ते जाती है। इधर-उधर से कर्ज लेकर भी कुछ रुपये कम पड़ जाते हैं और इस कमी को भीखू पूरा कर देता है; अपनी जिंदगी की समस्त जमा-जथा वह ज्वालाप्रसाद को सौप देता है और विद्या का विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न होता है।

विद्या के विवाह के बाद नवल राजनीतिक हलचलों में अधिक दिलचस्पी लेने लगा था। पूरे देश में दमन चक्र चल रहा था। देश के कोने-कोने से गिरफतारियों की खबरें आने लगी थीं। ज्ञानप्रकाश के कहने पर नवल सर्वदल सम्मेलन में स्वयंसेवक बनता है। उसके बाद ज्ञानप्रकाश नवल को लाहौर कांग्रेस के लिए दस नवयुवकों को तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपते हैं। उसमें नवल सर्वप्रथम अपना नाम लिखवाता है। इस बीच सिध्देश्वरी का नवल के नाम तार आता है जिसमें विद्या को फौरन ले जाने को कहा गया था। ज्ञानप्रकाश और नवल उसी रात उन्नाव चले जाते हैं। वहाँ जाकर देखते हैं कि विद्या को पूरे परिवार ने मिलकर बुरी तरह से पीटा है और उसका शरीर जगह-जगह से फूट गया है। मामला बहुत आगे बढ़ चुका है यह देखकर वे दोनों विद्या को साथ लिए इलाहाबाद वापस लौटते हैं।

नवल लाहौर कांग्रेस के लिए सिर्फ सात युवकों को बड़ी मुश्किल से जोड़ पाता है। विद्या भी अपनी ओर से लाहौर जाने के लिए खुद तैयार होती है। विद्या का लाहौर कांग्रेस के लिए जाना ज्वालाप्रसाद और यमुना को चिंताजनक लगता है किन्तु वे उसे रोकने में असमर्थ रहते हैं। उसके लाहौर जाने के बाद बिन्देश्वरीप्रसाद सिध्देश्वरी का दूसरा विवाह तय करता है। यह खबर सुनकर यमुना को धक्का सा लगता है, यह सदमा वह सहन नहीं कर पाती और विद्या से माफी माँगकर इस दुनिया से विदा लेती है। आखिर बिन्देश्वरीप्रसाद सिध्देश्वरी का दूसरा विवाह करता

15 मार्च से 'नारी शिक्षा सदन' में विद्या की नौकरी पक्की हो जाती है। नवल उषा से बहुत दिनों से मिला नहीं था। विद्या के कहने पर दोनों उषा से मिलने चले जाते हैं। जब नवल को सितानाथ से इस बात का पता चलता है कि उषा का विवाह राजेन्द्रकिशोर से तय होने जा रहा है; वह मानो आसमान से गिर जाता है और निराश भाव से घर लौटता है।

12 मार्च को गांधीजी के नेतृत्व में साबरमती से दांडी यात्रा निकलने वाली थी और 5 अप्रैल को गांधीजी नमक कानून तोड़ने वाले थे। उसी दिन देश भर में नमक कानून तोड़ा जाता था। यह सत्याग्रह का श्रीगणेश था। नवल भी इस आन्दोलन में सक्रिय होने जा रहा है, यह खबर सुनकर परिवार के सभी सदस्य सिवा विद्या के, चिंतित होते हैं।

नवल आन्दोलन से एक दिन पहले उषा से मिलने, उसे अपनी समस्त शुभकामनाएँ देने तथा उसे सदा के लिए मुक्त करने के लिए चला जाता है। उषा नवल को जेल जाने से रोकने का प्रयास करती है तो वह कहता है - "नहीं उषा, मैं तुमसे हमेशा के लिए विदा लेने, और तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करने आया था। अब शायद हम लोग फिर न मिलेंगे।"[4]

5 अप्रैल को जुलूस नवल के घर पहुँचता है। परिवार के सभी सदस्य नवल को विदा करते हैं और नवल जुलूस में शामिल हो जाता है। भीखू और ज्वालाप्रसाद को यह सब अजीब सा लगता है। इस प्रकार नवल के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के साथ ही उपन्यास सका अन्त होता है।

निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि उपन्यास में लगभग पचास वर्षीय भारतीय युग जीवन की विराट गाथा है। उपन्यास का विभाजन बदलते जीवन मूल्यों के साथ पाँच खण्डों में हुआ है। एक परिवार से आरम्भ होने वाली कथा एक युग जीवन को समेट लेती है। मध्यवर्ग, उच्चवर्ग और निम्न वर्ग का चित्रण करने वाला 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास एक गद्य-महाकाव्य बन गया है। -

'भूले बिसरे चित्र' कथावस्तु की समीक्षा

सन् 1959 में प्रकाशित 'भूले बिसरे चित्र' को निर्विवाद रुप से भगवती बाबू की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा जा सकता है। 'भूले बिसरे चित्र' में परिवर्तनशील भारतीय-जीवन की लगभग पाँच दशकों की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक झांकी प्रस्तुत करके, उसे भारतीय जीवन का महाकाव्य बनाने का प्रयत्न किया है। आलोचकों ने इसे निर्विवाद रुप से महाकाव्यात्मक उपन्यासों की कोटी में रखा है। महत कथानक बृहद् आयाम, पात्रों की अनेकता और विविधता, घटनाओं के बाहुल्य आदि के कारण 'भूले बिसरे चित्र' महाकाव्यात्मक-चेतना से मंडित वर्माजी की

1271 A

अत्यंत सफल कृति है। डॉ.सुषमा गुप्ता ने इसे 'कालिदास के महाकाव्य 'रघुवंश' की परम्परा" में रखा है।[5] भगवती बाबू ने इस उपन्यास में जिस शिल्प-विधान का परिचय दिया है वह विशिष्ट गरिमा से मंडित है। डॉ.सुषमा गुप्ता के शब्दों में कहें तो "इसमें एक परिवार की कथा के माध्यम से राष्ट्रीय घटनाओं का चित्रण किया गया है। अतः इसकी कथाएँ परिवार के सीमित दायरे से निकलकर राष्ट्रीय घटनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।"[6] उन्होंने ठीक ही कहा है कि, "भूले बिसरे चित्र' संक्रान्त युग की प्राणवान धरती का इतिहास रुपायित करनेवाली महान कृति है।"[7]

उपन्यास की पटभूमि विस्तृत है। इसका कथानक सन् 1885 से सन् 1930 तक का सम्पूर्ण भारत-वर्ष है। लेखक ने एक ही परिवार को केन्द्रबिन्दु बनाकर उसके चार पीढियों में समय के अन्तराल के साथ जो परिवर्तन आया उसके माध्यम से राष्ट्रीय घटनाओं का चित्र प्रस्तुत किया है। उपन्यास में लेखक का व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी दृष्टिकोण स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है।

उपन्यास में दो कथाओं का समावेश है। एक है-मुन्शी शिवलाल से लेकर नवल तक की, एक कायस्थ-परिवार के चारर पीढ़ियों की कथा और दूसरी कथा है - 1885 ई.से 1930-31 तक की भारतीय इतिहास की कथा। मुन्शी शिवलाल से लेकर नवल तक की एक ही परिवार के चार पीढियों की कथा आधिकारिक कथा है और भारतीय राजनीतिक-चेतना से सम्बन्धित कथा, प्रासंगिक कथा है। जहाँ तक दोनों कथाओं का गठन है वह एक-दूसरे से असम्बध्द प्रतीत होते हैं। डा.सुषमा गुप्ता के मतानुसार, "वस्तुतः यह कथा संयोजन उसी प्रकार का है जैसा कि 'गोदान' का शहरी और ग्रामीण कथा द्वारा निर्मित हुआ है।"[8] किन्तु 'गोदान' में ग्रामीण-जीवन से सम्बन्धित होरी तथा उसके परिवार की मुख्य कथा और नागरी जीवन से सम्बन्धित प्रो.मेहता तथा डॉ.मालती की गौण कथा एक-दूसरे से काफी हद तक दूर और प्रायः असम्बध्दता प्रतीत होते हैं। 'भूले बिसरे चित्र' में उतनी अधिक असम्बध्दता हमारे देखने में नहीं आती। कथानक के दोनों हिस्से एक-दूसरे से अलग दिखाई देने पर भी एक सूक्ष्म तत्व से बँधे हुए हैं। वास्तविकता यह है कि इसकी पारिवारिक कथाएँ राष्ट्रव्यापी घटनाओं के उद्घाटन में सहायक हुई हैं। दो भिन्न प्रतीत होती हुई कथाओं के मध्य भारतीय जीवन की विशाल धारा बहती है।

'भूले बिसरे चित्र' कितने ही पात्र और कितने ही घटनाओं को साथ लिए चलता है। जहाँ एक ओर मुन्शी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवलकिशोर, विद्या, ज्ञानप्रकाश आदि प्रमुख पात्र हैं वहाँ दूसरी ओर प्रभुदयाल, बरजोरसिंह, गजराजसिंह, लाल रिपुदमनसिंह, संतो, मलका, फरदतुल्ला,

लक्ष्मीचन्द, जैदेई, यमुना, छिनकी, घसीटे, उषा, राय बहादुर कामतानाथ, राधाकिशन, प्रेमशंकर, अलीरजा राधेलाल, किशनलाल, बिशनलाल, रामसहाय आदि कितने ही गौण पात्र कथानक में जुगनू की तरह चमचमा उठे हैं ।

'भूले बिसरे चित्र' में एक ही परिवार के मुन्शी शिवलाल से लेकर नवल तक के मूल इतिवृत्त के अलावा इसके अन्य प्रमुख घटनाएँ और प्रसंग है :-

1. प्रभुदयाल - ठाकुर गजराजसिंह
2. शिवलाल - छिनकी
3. ज्वालाप्रसाद - जैदेई
4. बिशनलाल - घुम्मू मिसिर
5. दंगल का आयोजन
6. शास्त्रार्थ
7. गंगाप्रसाद - संतो या सतवंती
8. गंगाप्रसाद - मल्का या माया शर्मा
9. मिस्टर हैरिसन के यहाँ वाले डिनर की घटना
10. गंगाप्रसाद - ज्ञानप्रकाश - नवल
11. नवल - उषा - विद्या

इसके अलावा घुण्डी स्वामी, छिनकी, भीखू, यमुना, अलिरजा, सत्यव्रत, रायबहादुर कामतानाथ, फरहतुल्ला, लाल रिपुदमनसिंह आदि सम्बंधी कथा भागों के अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोल से सम्बन्धित कांग्रेस के अधिवेशन, आर्य समाज की स्थापना, चौरी-चौरी की हिंसात्मक घटना और महात्मा गांधी द्वारा सामूहिक - सत्याग्रह की वापसी, पंजाब का मार्शल लॉ, साइमन कमीशन का विरोध, दमन चक्र, औपनिवेशिक स्वराज, नमक-सत्याग्रह - आन्दोलन आदि घटनाएँ तत्कालीन देशव्यापी राष्ट्रीय चेतना को उभारने में सहायक सिध्द हुई हैं । उपर्युक्त पात्रों, घटनाओं और प्रसंगों से तत्कालीन भारत का सजीव चित्र मूर्तिमान हो उठा है ।

कथानक का आरम्भ :

"उपन्यास का आरम्भ महत्वपूर्ण होता है और अंशतः इसी पर उपन्यास का भविष्य निर्भर

होता है । उपन्यास का आदि यदि रोचक, कुतूहलवर्धक तथा हृदयग्राही हो तो उसकी सफलता असंदिग्ध है ।"[9] 'भूले बिसरे चित्र' का आरम्भ निःसन्देह रोचक, कुतूहलवर्धक तथा प्रभावशाली ढंग से किया गया है । कथानक का आरम्भ 4 जुलाई, सन् 1885 से होता है । मुन्शी शिवलाल ठाकुर भूपसिंह को महाजन मैकुलाल के खिलाफ एक इस्तगासा लिख देते हैं । मुन्शी शिवलाल इस्तगासा इस तरह लिख देते हैं कि पूरा सच झूट में बदल जाए । मुन्शी शिवलाल इस्तगासे को हाथ में लेते हुए कहते हैं - "तौन वह इस्तगासा लिखा है ठाकुर, कि वह सार मैकूललवा सीधे पाँच साल के लिए लद जाय ।"[10]

ठाकुर भूपसिंह इस्तगासे को सुनकर जिस तरह भड़क उठता है, उससे तत्कालीन सामन्तीय जीवन का यथार्थ चित्र हमारे सामने खड़ा होता है । मैकुसिंह एक बनिया है और ठाकुर भूपसिंह ने उससे कर्ज लिया है । जब वह कर्ज की मांग करता है तो भूपसिंह ऊपर से उसे ही मिटा देता है । एक जमींदार बनिये के कर्ज तले डूब रहा है फिर भी वह अपनी मान्यताएँ और अहंम् को छोड़ नहीं रहा । वह अब भी अपने को बनिये से उँचा समझता है । इस प्रकार उपन्यास के आरम्भ में ही लेखक ने ठाकुर और बनिये के माध्यम से तत्कालीन सामन्तवादन और पूँजीवाद के संघर्ष की समस्या को उभारा है । ज्वालाप्रसाद के नायब तहसीलदार बनने के बाद इस प्रारम्भिक संघर्ष का स्वाभाविक विकास ठाकुर बरजोरसिंह और प्रभुदयाल के रूप में दिखाया गया है। अतः कथानक का आरम्भ रोचक, कौतूहलवर्धक तथा कथा विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

मध्य - कथानक - विकास :

कथानक का मध्य - विकास पेचिदार एवं उलझनपूर्ण न होकर सरल, स्वाभाविक गति से विकसित हुआ है । कथानक की एक घटना दूसरी घटना की ओर स्वतः अग्रसर हो पाई है । कथा के प्रारंभिक अवस्था में जो संघर्ष उपस्थित किया है उसका विकास प्रभुदयाल और बरजोरसिंह के संघर्ष में स्वाभाविक ढंग से हुआ है । समय के साथ मान्यताएँ बदल रही हैं । एक तरफ सामन्तवाद अपनी फिजूलखर्ची और झूटी मान - मर्यादा की रक्षा के लिए प्रभुदयाल जैसे महाजनों से कर्ज ले - लेकर ह्रासोन्मुख हो रहा है तो दूसरी ओर अपने अहंम् को छोड़ने को तैयार नहीं होता अब भी वह अपने-आप को बनिये से श्रेष्ठ समझता है । एक स्थान पर बरजोरसिंह कहता है - "अरे राज - खानदान के हैं, कोई बनिया - बक्कार थोड़े ही हैं ।"[11] और वह प्रभुदयाल से

दुश्मनी मोल लेता है । अपने खानदान को श्रेष्ठ दिखाने के लिए ये लोग जहाँ अपने द्वार पर हाथी बँधवाते हैं वहीं दूसरी ओर अपनी जमीन को बचाने के लिए अपना पुश्तैनी हाथी भी दाँव पर लगाने को तैयार हैं । बरजोरसिंह के ये शब्द सामन्ती मान्यताओं के प्रकाश में बहुत महत्वपूर्ण बन पड़े हैं - "बनिये साले क्या हाथी पालें, हाथी तो पलता है हम राजकुल वालों के यहाँ ।"[12]

आखिर प्रभुदयाल बरजोरसिंह से मुकदमा जीत जाता है और उसकी जमीन हड़प लेता है । यह केवल दो व्यक्तियों के बीच का संघर्ष नहीं है अपितु सामन्तवाद पर पुँजीवाद की विजय है । इसका चरम विकास पुँजीपति लक्ष्मीचन्द में किया है जिसके लिए पैसा ही सब कुछ है । अपने स्वार्थ के लिए वह एक ओर सरकार को चंदा देता है, तो दूसरी ओर कांग्रेस को तो गंगाप्रसाद जैसे सरकारी अफसरों को रिश्वत देता है - कर के रूप में । उसके लिए पैसे ही सब कुछ है । पैसे के लिए वह मां को भी गाली देता है । जहाँ एक ओर सामन्तवाद पर पुंजीवाद की विजय दिखाई गई है वहाँ दूसरी ओर एक ही परिवार के चार पीढ़ियों में हुए परिवर्तन को लेखक ने केन्द्र बनाया है । जहाँ मुन्शी शिवलाल नोकरशाही की प्रारम्भिक अवस्था में है वहाँ वह अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदारी पर नियुक्त करने में सफल होता है । यह पारिवारिक नोकरशाही का विकास-पथ था । ज्वालाप्रसाद नायब तहसीलदार से डिप्टी कलक्टर बनकर अवकाश ग्रहण करता है, किन्तु उसका पुत्र गंगाप्रसाद 'बी.ए.' उत्तीर्ण कर सीधे डिप्टी कलक्टर और बाद में कलक्टर बन जाता है । यह मध्यमवर्गीय नोकरशाही का चरम अत्थान ही था । गंगाप्रसाद अंग्रेजों का सेवक होने के कारण अपने ही देशवासियों पर निर्दयतापूर्वक अन्याय - अत्याचार करता है किन्तु गंगाप्रसाद का पुत्र नवलकिशोर 'आई.सी.एस.' बनकर नौकरी करने के अलावा देशव्यापी नमक - सत्याग्रह में भाग लेता है ।

मुन्शी शिवलाल की मान्यताएँ परम्परावादी हैं । वह संयुक्त परिवार प्रथा का समर्थन करता है । किन्तु यह आस्था आगे की पीढ़ीयों में नहीं रहती । पुरानी मान्यताएँ मिट रही हैं, नई बन रही हैं फलस्वरूप ज्वालाप्रसाद की मान्यताएँ मुन्शी शिवलाल की मान्यताओं से टकराती हैं। मुन्शी शिवलाल की मान्यताएँ कमजोर पड़ जाती हैं और उसकी मृत्यु होती है । इस बीच संयुक्त परिवार प्रथा से भी आस्था जाती रही । ज्वालाप्रसाद के समय ही परिवार का विघटन होने लगा था किन्तु ज्वालाप्रसाद के मन में अपने परिवार के प्रति आत्मीयता थी, किन्तु गंगाप्रसाद के आते-आते यह आत्मीयता भी जाती रहती है । वह अपने पास आए, अपने चाचा के लड़के बन्सीधर

को अपना स्वीकार करने में भी संकोच करता है । वह कहता है - "कौन रामलाल और कौन बंसीधर ? इन लोगों को तो मैं नहीं जानता ।"[13]

इसके साथ ही पूरे देश में अंग्रेजी शासन स्थापित होने के बाद देश की चेतना जाग उठी है । हिन्दुस्थान की शिक्षित पीढ़ी अपने अधिकार और अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है । महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश की समस्त जनता एकत्रित होकर अंग्रेजों के खिलाफ आवाजें उठा रही है । अपने अधिकार के लिए संघर्ष कर रही है । कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन हो रहे हैं, असहयोग आन्दोलन चल रहा है, स्वदेशी का प्रचार और विदेशी का बहिष्कार किया जा रहा है, सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा है । इन घटनाओं के घात - प्रतिघात से कथानक का मध्य - विकास स्वाभाविक गति से हुआ है ।

जहाँ तक कथा - प्रवाह का प्रश्न है - सम्पूर्ण उपन्यास पाँच छोटे - बड़े खण्डों में विभाजित है । किन्तु लेखक ने प्रत्येक पीढ़ी की कथा को पृथक-पृथक खण्डों तक सीमित नहीं रखा है और इस प्रकार उसने कृत्रिम वस्तुविन्यास का सहारा नहीं लिया है । उपन्यास का खण्ड-विभाजन बदलते हुए जीवन-मूल्यों और कथानक के नये मोड़ों के आधार पर हुआ है । "लेखक ने प्रत्येक पीढ़ी का संघर्ष अपनी गत पीढ़ी से उतना अधिक नहीं दिखलाया है, जितना तत्कालीन वातावरण एवं सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों या व्यक्तिसमूह से ।"[14] कथा-प्रवाह प्रथम दो खण्डों में जिस खूबी के साथ प्रवाहित हुआ है वह बाद के खण्डों में नहीं । प्रथम और द्वितीय खण्डों में सामन्तीय परम्परा और उसके टूटने का दर्द बहुत सफलता के साथ प्रस्तुत करने में भगवती बाबू सिध्दहस्त हैं । पहले खण्ड में प्रभुदयाल और बरजोरसिंह का बाहय संघर्ष दिखाया गया है जिसमें ज्वालाप्रसाद को अकारण ही मानसिक वेदना सहनी पड़ती है । युग परिवर्तन के साथ स-ता एक हाथ से दूसरे हाथ में जा रही है । बरजोरसिंह प्रभुदयाल से स-ता में नीचा होता जा रहा है परन्तु वह अपना संस्कारजन्य अहम् तथा अभिमान नहीं छोड़ पाता । अपनी झूठी शान को दिखाने के लिए जहाँ एक ओर वह अपने दरवाजे पर हाथी बांधता है वहाँ दूसरी ओर गुण्डन जैसे स्नांस्कृतिक अवसरों पर प्रभुदयाल से कर्ज लेकर अपनी हैसियत से अधिक खर्च करता है । उसके फिजूल खर्चे भी कम नहीं थे । अपना सब कुछ दाँव पर लगाने के बाद भी "हम राज खानदान के हैं, कोई बनिया बक्कार थोड़े ही हैं"[15] इस प्रकार रोब जमाता है । और वह अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए कुछ भी सही-गलत ढ़ंग से करने को तत्पर है । राजा चन्दभूषणसिंह के शब्द तत्कालीन सामन्तवादी मान्यताओं को उजागर करते हैं -

"राज-वंश अभी इतना निर्बल नहीं हुआ है कि कायर बनकर चुपचाप बैठ जाय । इस बनिये की इतनी मजाल कि वह हम लोगों का अपमान करे ।" [16]

इस प्रकार प्रभुदयाल और बरजोरसिंह का संघर्ष चरमसीमा पर पहुँचता है । ज्वालाप्रसाद कर्तव्य और भावना के चक्कर में पड़कर झगडे को शान्त करने का प्रयत्न करता है किन्तु वह अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर पाता । एक स्थिति संभालने में दूसरी स्थिति बिगड़ जाती है । इस प्रकार इस खण्ड में सामन्तवाद के शव पर पूँजीवाद की विजय प्रभावशाली ढंग से चित्रित की गई है ।

दुसरे खण्ड में सामन्तवाद पर पूँजीवाद का सम्पूर्ण अधिपत्य दिखाकर पूँजीवादी युग में पारिवारिक झगड़ों और उनकी बदलती मान्यताओं को उठाया है । यह खण्ड पूर्णतः ज्वालाप्रसाद के पारिवारिक झगड़ो से भरा पड़ा है । शक्ति और अधिकार की कहानी इसमें भी है । पहले-खण्ड में जहाँ वह सामाजिक क्षेत्र में घटित होती है वहाँ इस खण्ड में पारिवारिक क्षेत्र में बीतती है । परिवार में स्वामित्व अब उसके हाथ में आ गया है, जिसके पैसों का अश्रित पूरा परिवार है । पैसे के ही बल पर ज्वालाप्रसाद के परिवार में अधिकार और शक्ति के स्थानपरिवर्तन का अवसर आया । घर की मालकिन अब सास नहीं, बहू बन गई है, क्यों कि उसका पति कमाता है और पूरे परिवार का भरण-पोषण करता है । मुन्शी शिवलाल यह देखते हैं कि अधिकार और शक्ति अपना स्थान बदल रहे हैं, एक जगह से दूसरी जगह जा रहे है; तो वे छिनकी से कहते हैं कि राधेलाल की पत्नी को ही घर की मालकिन समझे । किन्तु छिनकी इसका कड़ा उत्तर देती है - "घर की मालकिन ज्वाला की बहू आय । ई जो सब राज-पाट आय तौन ज्वाला की बदौलत सब लोग भोग रहे ऑय ।" [17] ज्वालाप्रसाद को अपने परिवार से ममता-मोह है । किन्तु उनका आवारापन और निकम्मापन उसे पसन्द नहीं है इसलिए वह राधेलाल के परिवार को अपने घर से निकाल देता है । इस प्रकार सम्मिलित परिवार के विघटन और गंगाप्रसाद के पढ़ने की व्यवस्था करने से इस खण्ड की समाप्ति होती है ।

तीसरे खण्ड का आरम्भ एक लम्बे अन्तराल के बाद होता है और वह भी बिलकुल नये पात्रों और नये युग के रुप में । इस खण्ड के आरम्भ में ही एक पात्र, पंडित सोमेश्वरदत्त कहता है - "अब हम पूर्ण रुप से गुलाम हो गए । इंग्लैण्ड का बादशाह दिल्ली में अपना दरबार करने आ रहा है, हिन्दुस्थान के राजे-महाराजे उसके सामने अपना सिर झुकाएँगे, उसकसो नजरें देंगे, उसका आधिपत्य स्वीकार करेंगे ।"

यहीं से कथानक-प्रवाह बिखरा लगने लगता है । पहले और दूसरे खंड में सामन्तीय जीवन और संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण करने में लेखक को जो सफलता मिली है वह तीसरे

खण्ड में नहीं। तीसरे खण्ड में कथानक का केन्द्रबिन्दु ज्वालाप्रसाद का परिवार नहीं रह जाता। कथानक कभी हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य में खो जाता है और कभी संतो बीबी के मानसिक भटकाव के चित्रण में। पाठक कथानक की धुरी को सरका हुआ अनुभव करता है। लेखक गंगाप्रसाद के पढ़ाई से लेकर डिप्टी कलक्टर बनने तक के बीच के समय-फलक को एक ही झटके में फाँदकर कथानक को एकदम नये मोड़ पर लाकर स्थापित करता है। यह अस्वाभाविक भले ही लगे किन्तु लेखक ने निष्प्रयोजन ही ऐसा नहीं किया है। ऐसा करके भगवती बाबू ने अनावश्यक कथा-विस्तार से उपन्यास को बचाया है। इस बीच के समय को एकदम छोड़ दिया है ऐसी बात नहीं। लेखक ने स्थान - स्थान पर प्रसंगानुसार इस बीच घटी घटनाओं का पात्रों द्वारा विवरण दिया है। इसके बावजूद भी तीसरे खण्ड में सब कुछ है जिसे चित्रित करने में भगवती बाबू अत्यंत सिध्दहस्त हैं। रोचकता को कायम रखने में लेखक को सफलता मिली है।

चौथे खण्ड में लेखक कथानक को पुनः ज्वालाप्रसाद के परिवार में स्थापित तो कर देता है किन्तु यहीं से वह अधिक बिखरा लगने लगता है। कथानक कभी राजनीतिक बहासों, कांग्रेस के अधिवेशनों, आन्दोलनों, जुलुसों और हड़तालों में तो कभी लाल रिपुदमनसिंह, माया शर्मा, सत्यव्रत आदि कथा-भागों में बिखर जाता है। यहाँ पाठकों की अन्विति भंग होती हुई स्पष्ट दिखाई देती है। डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव के मतानुसार, "यहीं से कथानक की गहनता समाप्त होने लगती है परिणामस्वरूप पाँचवे खण्ड में चित्रित नई पीढ़ी का संघर्ष बड़ा ऊपरी आदर्शवादी मालूम पड़ता है चौथे और पाँचवे खण्ड में चित्रित दुनिया पहले और दूसरे खण्ड की दुनिया की तरह प्रामाणिक नहीं लगती।"[19] यह सच है कि पाँचवे खण्ड के रूप में लेखक का आदर्श बोलता है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि चौथी पीढ़ी का नवल लेखक की अपनी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है।

भगवती बाबू के व्यक्तित्व का सूक्ष्मता से अध्ययन करने से पता चलता है कि चौथी पीढ़ी के नवल का व्यक्तित्व और उसका संघर्ष लेखक के अपने जीवन संघर्ष से काफी मिलता - जुलता है। इसलिए उपन्यास के पाँचवे खण्ड में जो बाहरी संघर्ष दिखलाया गया है वह लेखक द्वारा प्रयत्नपूर्वक थोपा हुआ लगने लगता है। पाँचवे खण्ड का सम्पूर्ण इतिवृत्त लेखक ने अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप देने के लिए प्रस्तुत किया है। कुछ भी हो लेखक ने इस अंतिम खण्ड का चित्रण खूबी के साथ किया है। गंगाप्रसाद के मृत्यु के बाद टूटती नौकरशाही परम्परा और बदलती मान्यताओं का चित्रण नवलकिशोर को केन्द्र बनाकर सफलता के साथ किया है।

'भूले बिसरे चित्र' एक बृहद् आयाम को लेकर लिखा गया उपन्यास है। कूछ घटनाओं

और प्रसंगों के कारण कथा - प्रवाह में शिथिलता आई है किन्तु महाकाव्यात्मक उपन्यासों में इस प्रकार के दोषों की सम्भावना रहती ही है और 'भूले बिसरे चित्र' तो एक युग को प्रस्तुत करनेवाली भगवती बाबू की सर्वश्रेष्ठ कृति है । डॉ. महावीरमल लोढ़ा के शब्दों में - "इसका प्रत्येक खण्ड अपने में पूर्ण होते हुए भी एक ही परिवार के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अंत तक इसकी एकसूत्रात्मकता बनी रहती है ।"[20] इसका कारण यह है कि लेखक का अभीष्ट मात्र एक परिवार की कथा कहना नहीं है अपितु एक परिवर्तनशील युग का समस्त लेखा-जोखा प्रस्तुत करना है । इस प्रकार कथानक - धारा - प्रवाह कुछ असम्बध्द घटनाओं के बावजूद सरल, स्वाभाविक गति से प्रवाहित हुआ है ।

"भूले बिसरे चित्र' के कथानक की जो अन्य विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं, वह इस प्रकार हैं -

कुतूहल और रोचकता :

उपन्यास के कथानक में कुतूहल का अपना अलग महत्व रहता है क्यों कि कुतूहल उस रोचकता की सृष्टि करता है जिससे पाठक को आनन्द की प्राप्ति होती है । इसलिए उपन्यासकार का यही प्रयत्न रहता है कि, कथानक मे आद्योपान्त कुतूहल अक्षुण्ण बना रहे । डॉ.रमाकान्त श्रीवास्तव के मतानुसार, "जहां तक उपन्यास में मनोरंजन - तत्व का प्रश्न है भगवती बाबू हिन्दी के सर्वाधिक सफल उपन्यासकारों में से एक हैं । ' भगवती बाबू में कहानी सुनाने की अनोखी क्षमता है । उनके उपन्यास यह आभास देते हैं, जैसे कोई सामने बैठ कर किस्सा सुना रहा हो ।"[21] कहने की आवश्यकता नहीं कि कथानक की रोचकता 'भूले बिसरे चित्र' का प्राण है । उपन्यास पढ़ते समय पाठक के मन में आद्योपान्त कुतूहल और जिज्ञासा बराबर बनी रहती है । उपन्यास में अनेक घटनाएँ और प्रसंग आये हैं जो रोचक और कुतूहलवर्धक बन पडे हैं । भगवती बाबू घटनाओं की त्वरा में प्रमुख पात्र को विपत्ति मे डालकर पाठक की उसके प्रति उत्सुकता और सहानुभूति जाग्रत करते हैं, कि वह पात्र की विपत्ति, घात-प्रतिघात तथा समस्याओं के प्रति चिंतित हो जाता है और शीघ्रता से अन्त की प्रतीक्षा करने लगता है ।

कथानक की घटनाएँ और प्रसंग सजीव और यथार्थ जीवन से सम्बन्धित होने के कारण रोचकता में चार चाँद लग गये हैं । उससे उपन्यास में गांभीर्य और गरिमा का समावेश हुआ है । ज्वालाप्रसाद के सम्पूर्ण परिवार की कथा के साथ इसकी अन्य उल्लेखनीय रोचक कथाएँ हैं -

प्रभुदयाल - बरजोरसिंह, ज्वालाप्रसाद - जैदेई की कथा, गंगाप्रसाद - रातवंती, गंगाप्रसाद - मलका, सत्यव्रत - माया शर्मा और रिपुदमनसिंह की कथा आदि । डा.कुसुम वार्ष्णेय कथानक के 'भावात्मक संवेदना' को लेकर लिखती हैं - "कुतूहल तथा उत्सुकता से अधिक उसमें पाठकों का भावात्मक संवेदना उत्पन्न करनेवाला तत्व है । उसकी कहानी में पाठक ऐसा खो जाता है, उसकी घटनाओं और स्थिती में वह इतना घुल - मिल जाता है कि उसे सब कुछ पारिचेत तथा अपने और अपने निकटतम पर गुजरता हुआ प्रतीत होता है ।"[22]

भगवती बाबू ने कथानक में रोचकता कायम रखने के लिए मुख्य कथा के साथ अनेक उपकथाओं को जन्म दिया है । वे उपन्यास का प्रारम्भ एक कथा से करते हैं, जो शीघ्र ही अपने सहज स्वाभाविक गति के कारण अन्य कथाओं को जन्म देती है । "प्रेमचन्द की तरह वर्माजी कथानक को रोचक बनाने में सिध्दहस्त हैं । उपन्यासों में वह एक कथा को उठाते हैं और जब वह चरमबिन्दु पर पहुँचने वाली होती है तो उसे छोड़कर अन्य सूत्रों को उठा लेते हैं । इस तरह उनके उपन्यासों मे रोचकता बनी रहती है ।"[23] डा.बैजनाथ प्रसाद शुक्ल का यह मत युक्तियुक्त है ।

कथानक में कहीं-कहीं लम्बे वाद-विवाद और तर्क खटकते हैं । जैसे शास्त्रार्थ का प्रसंग, ज्ञानप्रकाश और उनके साथियों में चल रही राजनीतिक बहस आदि । किन्तु इसके बावजूद 'भूले बिसरे चित्र' में प्रेमकथाओं तथा राजनीतिक स्थितियों द्वारा युगचेतना की सफल अभिव्यक्ति होने के कारण कथानक हृदयग्राही तथा रोचक बन पड़ा है ।

स्वाभाविकता तथा सजीवता :

स्वाभाविकता तथा सजीवता उपन्यास की मुख्य विशेषता है । उपन्यास की घटनाएँ, प्रसंग तथा पात्र सजीव, स्वाभाविक तथा विश्वसनीय हों तो उसकी सफलता असंदिग्ध रहती है । इसलिए उपन्यास में सम्मिलित सभी छोटी - बड़ी घटनाएँ रोजमर्रा के जीवन में घटित होने वाली, मानव जीवन से सम्बन्धित, सजीव, स्वाभाविक एवं विश्वसनीय होनी चाहिएँ । साथ ही कलात्मक सौष्ठव के लिए उसमें कल्पना तथा यथार्थ का उचित समन्वय होना आवश्यक है । इसलिए उपन्यासकार को चाहिए कि वह ऐसे कथानक का निर्माण करे जिसमें मानव जीवन की प्रतिछवि काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ लगे ।

जहाँ तक 'भूले बिसरे चित्र' का प्रश्न है, उसके कथानक का उद्भव - विकास और अन्त स्वाभाविक घटनाओं एवं प्रसंगो तथा परिवर्तित परिस्थितियों द्वारा हुआ है । सन् 1885 के लगभग अंग्रेजी शासन की जड़े भारत में मजबूत होने के बाद देश में जो परिवर्तन आया उसका यथार्थ चित्र इसमें प्रस्तुत है । इस युग में जहाँ सामन्तीय जीवन अपनी अकर्मण्यता, विलासिता और फिजूलखर्ची से ह्रासोन्मुख हो रहा था वहाँ दूसरी ओर प्रभुदयाल जैसे महाजन अपना सर उठा रहे थे । सत्ताएक हाथ से दूसरे हाथ में जा रही थी । देहात का महाजन जमींदार बन रहा था । राजवंश समाप्त हो रहा था । ठाकुर बनिये से नीचा हो रहा था । उसके जमीन पर अब पूर्ण रूप से बनिये का अधिपत्य हो गया था । यह सामन्तवाद पर पुंजीवाद की विजय थी । इस युग के पूंजीपतियों के लिए पैसा ही ईमान बन गया था । उसके लिए वह अपनी माँ को भी गाली देता है। पैसे के लिए वह सब कुछ सही - गलत ढंग से करता था । पैसाही इस युग की कमजोरी है । एक स्थान पर ज्ञानप्रकाश कहता है -- "यह पुँजीपति जबरदस्त मुनाफा उठाता है । उस मुनाफे का छोटा - सा हिस्सा सरकार को देता है, तकि सरकार से उसे हर तरह की सुविधाएँ मिलें । इस मुनाफे का छोटा - सा हिस्सा वह देता है कांग्रेस को, ताकि स्वदेशी का आन्दोलन जोर पकड़े और उसका माल जोरों के साथ बिके । इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइंट मॅजिस्ट्रेट को ताकि लक्ष्मीचन्द जो लुट-खसोट, बेईमानी करता है, उसके बारे में सरकारी कर्मचारी आँखे बन्द कर लें । रूपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है ।'[24] प्रभुदयाल, बरजोरसिंह, गजराजसिंह, राजा चन्द्रभूषणसिंह, राजा सरोहनसिंह, लाला घनश्यामदास और लक्ष्मीचंद से सम्बन्धित कथा-भागों में तत्कालीन सामन्तवादी और पुँजीवादी जीवन स्वाभाविक, सजीव तथा यथार्थ बन पड़ा है ।

संयुक्त परिवार जो अभी तक संगठित था, युगीन परिवर्तन में वह विघटित होने लगा था । एक परिवार के चार पीढ़ियों में समय के साथ जो परिवर्तन हुआ उसका क्रमिक सजीव चित्र एक कायस्थ परिवार को मद्देनजर रखते हुए मुन्शी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवलकिशोर और विद्या के माध्यम से प्रस्तुत किया है । एक मध्यमवर्गीय कायस्थ परिवार के उद्भव - विकास और विघटन की प्रक्रिया को सहज, स्वाभाविक गति से प्रस्तुत किया गया है । तत्कालीन युग में सामाजिक मान्यताएँ बदल रही थीं, पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थीं । अधिकार के स्थान बदल रहे थे । पुराना मिट रहा था, नवीन का प्रचार किया जा रहा था । समाज के नवयुवकों में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरी करना एकमात्र अभीष्ठ बन गया था, वहां दूसरी ओर अपने अधिकार और अस्तित्व के लिए नौकरशाही को त्यागकर स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण

के लिए वहीं नवयुवक संघर्ष कर रहे थे । ज्ञान प्रकाश और नवलकिशोर के माध्यम से तत्कालीन संघर्षशील नवयुवकों का चित्र यथार्थ भूमि पर चित्रित किया है । उसी प्रकार तत्कालीन निम्न वर्ग अपने मालिकों की सेवा में किस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी सेवारत था इसका सजीव चित्र छिनकी, घसीटे और भीखू के माध्यम से चित्रित किया गया है ।

प्रारम्भिक राजनीतिक आन्दोलनों से नमक आन्दोलन तक का क्रमशः युगीन दस्तावेज प्रस्तुत करने में उपन्यासकार को अधिक सफलता मिली है । कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन, चौरी चौरा की हिंसक घटना, पंजाब का मार्शल लॉ, सायमन कमीशन, सामूहिक - सत्याग्रह आन्दोलन, आदि घटनाएँ भारतीय इतिहास को जीवंत करती हैं, पाठक के मस्तिष्क में भारत के भूले बिसरे चित्र साक्षात सजीव हो उठते हैं । लेखक ने 1885-1930 तक के भारतीय जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, स्वांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक झाँकी प्रस्तुत की है । अल्लाम्मा बहशी, स्वामी जटिलानंद, फरहतुल्ला, अलिरजा साथ ही लड़कियों को बेचती नायक जाति, मुलतान की साम्प्रदायिक घटना आदि संबंधी कथाएँ तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक परिस्थिति को उभारते हैं । अंग्रेजी शासन और सामन्तवाद की समाप्ति साथ ही पूँजीवाद का उदय, इग्लैंड के बादशाह पंचम जार्ज के स्वागत में 1911 इ. में हुए दिल्ली दरबार तथा नगर की स्थापना, कांग्रेस के अधिवेशन जलियांवाला - बाग हत्याकाण्ड, असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह आन्दोलन आदि घटनाएँ राजनीतिक परिस्थिति का युगीन दस्तावेज यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किया गया है । शादी - ब्याह, मुण्डन, बरसी, होली दंगल आदि घटजाएँ और प्रसंग हमें तत्कालीन स्वांस्कृतिक परिस्थिति से अवगत कराते हैं, तो खर्चीले सामाजिक, धार्मिक रीति - रिवाज, पूँजीवाद का उदय, विवाह और दहेज समस्या, वेश्याओं की आर्थिक समस्या, अंग्रेजी शासन द्वारा भारतीय जनता का शोषण, बिन्देश्वरी द्वारा ज्वालाप्रसाद का शोषण आदि कथाओं से तत्कालीन आर्थिक स्थिति का परिचय मिलता है । इसका चित्र बरजोरसिंह, लक्ष्मीचन्द, ज्वालाप्रसाद, सतवंती, मलका आदि संबंधी कथाओं में मिलता है ।

इस प्रकार तत्कालीन भारतीय जीवन स्वाभाविक, तथा विश्वसनीय ढंग से और समग्रता के साथ चित्रित करने में भगवती बाबू को अपूर्व सफलता मिली है । किन्तु कुछ घटनाएँ और प्रसंग स्वाभाविक तथा विश्वसनीय नहीं लगते । घुण्डी स्वामी का प्रसंग चमत्कारिक तो है किन्तु उसके द्वारा दिए गये भभूत से लाल रंग का पत्थर और मुंगा निकलना प्रायः अविश्वसनीय लगता है । उसी प्रकार शास्त्रार्थ की घटना स्वाभाविक नहीं है । गंगाप्रसाद का रेल सफर में पहली मुलाकात में ही संतो के प्रति आसक्त होना और तत्पश्चात उनमें अवैध - यौन सम्बन्ध स्थापित होना नितांत

अस्वाभाविक लगता है। उषा का नारी सम्बन्ध बदला हुआ दृष्टिकोण स्वाभाविक नहीं लगता क्यों कि एक लम्बे समय तक विलायत हो आई नारी के मन में स्त्री स्वतंत्रत का विरोध करना प्रायः अजीब-सा लगता है। किन्तु ये घटनाएँ और प्रसंग अस्वाभाविक, लगने पर भी असंभव नहीं हैं। अतः स्वाभाविकता की दृष्टि से कथानक की विशेष क्षति नहीं करते।

गठन अथवा सम्बद्धता :

"उपन्यास के गठन की दृढता इस बात पर निर्भर रहती है कि घटनाओं का कितना पारस्पारिक संबंध है और विभिन्न पात्र न केवल एक-दूसरे से, बल्कि उन घटनाओं से भी कितने बंधे हुए हैं। घटनाओं का प्रवाह पाठक को विषयवस्तु की ओर ले जाता है अथवा नहीं - यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।" 'भूले बिसरे चित्र' में मुख्य कथानक के साथ कितने ही अन्तर कथाएँ और प्रमुख पात्रों के साथ कितने-ही गौण पात्र प्रवाहित हुए हैं। इससे पहले हमने उपन्यास की आधिकारिक कथा और प्रासंगिक कथा केगठनका विवेचन किया है।

जहाँ तक अनावश्यक और असम्बद्ध कथा-विस्तार का प्रश्न है, 'भूल बिसरे चित्र' में वह नहीं के बराबर है। एक ही परिवार से सम्बन्ध रखने वाले चार पीढ़ियों का उद्भव - विकास और विघटन स्वाभाविक ढंग से सम्बद्ध है। कथानक की कुछ घटनाएँ और प्रसंग हमें मुख्य कथा से असम्बद्ध और अनावश्यक लगेंगे, अगर हम उपन्यास का नायक एक कायस्थ वंश को मान ले- यहाँ तक कि पहले खंण्ड का समस्त इतिवृ-त भी इसके आधार पर अप्रासंगिक कथा की कोटी में रखना पड़ेगा क्यों कि ठाकुर बरजोरसिंह और प्रभुदयाल का बाह्य संघर्ष ज्वालाप्रसाद के जीवन से किसी भी प्रकार सीधा सम्बन्ध नहीं रखता। इसके अतिरेक्त ज्वालाप्रसाद के मामा रामसहाय के यहां वाला कुएँ को लेकर ब्राह्मणों और चमारों का विवाद, दंगल का आयोजन, शास्त्रार्थ आयोजन, घुण्डी स्वामी का प्रसंग, साथ ही लाल रिवुदमनसिंह, प्रेमशंकर, सतवंती, राधाकिशन, रानी साहिबा विजयपुर, रानी साहिबा घाटनाबाग, लावण्यप्रभा, मेजर वाट्स यहाँ तक की लक्ष्मीचन्द से सम्बन्धित कथा भी मुख्य कथा से विलग दिखने लगती है।

किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इन घटनाओं, प्रसंगों का अपना अलग महत्व है। एक निश्चित प्रयोजन से ही लेखक ने इनका सृजन किया है।" वस्तुतः 'भूले बिसरे चित्र' का नायक यह कायस्थ वंश नहीं, 1885 से 1930 का समूचा भारतीय समाज है, जिसका चित्रण लेखक ने स्वांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पहलुओं से किया है। चित्रण में गहरा रंग देने के लिए लेखक को कथानक का अमित विस्तार, पात्रों की विविधता और अनेकता, प्रसंगों और घटनाओं की

भीड़ प्रस्तुत करनी पड़ी है । और इस रुप में अनावश्यक कथा-विस्तार, अप्रमुख और प्रासंगेक कथा एवं घटनाओं के विवाद की बात आप-ही-आप समाप्त हो जाती है ।"[26] डॉ. कुसुम वार्ष्णेय के इस मत से मैं पूर्णतः सहमत हूँ क्यों कि लेखक का उद्देश मात्र एक कायस्थ वंश की कथा कहना नहीं है अपितु 1885-1930-31 तक के सम्पूर्ण भारत वर्ष की परिवर्तनशील झाँकी प्रस्तुत करना है । इस महत् उद्देश्य की प्राप्ति तथा तद्युगीन समस्याओं के उद्घाटन के लिए लेखक को अनेक प्रासंगेक कथाओं को जन्म देना पड़ा है ।

इसके बावजूद भी कुछ घटनाएँ तथा प्रसंग हमें खटकते हैं । दंगल की घटना, घुण्डी स्वामी का प्रसंग, शास्त्रार्थ की घटना, लाल रिपुदमनसिंह संबंधी प्रसंग आदि । इन प्रसंगो और घटनाओं से कथानक में दुर्बलता आई है । अतः इन्हें उपन्यास से निकाल भी दिया जाए तो भी उपन्यास की कोई क्षति नहीं होगी अपितु उपन्यास अधिक सुगठित तथा प्रभावशाली होगा ।

मर्मस्पर्शी स्थल :

कथानक में भावात्मक तथा मर्मस्पशी स्थल होने चाहिए, जो अकृत्रेम हों । इससे कथानक अधिक रोचक, स्वाभाविक एवं प्रभावशाली बन जाता है । 'भूले बिसरे चित्र' में मर्मस्पर्शी स्थलों की कमी नहीं है । ज्वालाप्रसाद का होली के दिन विधवा जैदेई के घर जाना और दोनों तन-मन से एक होना कम मार्मिक नहीं है । इस प्रसंग के अवसर पर जैदेई द्वारा कहे गये शब्द अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं -

"देवरजी, होली खेलने आए हो, लेकिन तुमने मुझे गुलाल नहीं लगाया, तुमने मुझे अपनी बाँहों में नहीं भरा । मेरे साथ जी भरकर होली खेलो, कोई हौसला बाकी न रह जाए । मेरे पास जो कुछ है वह तुम्हारा है - रुपया-पैसा, रुप-जवानी सभी कुछ ।"[27]

उपन्यास में घसीटे, मुन्शी शिवलाल, गंगाप्रसाद, जैदेई आदि पात्रों के मृत्यु प्रसंग अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं । नवल का उषा के जीवन से हमेशा के लिए दूर होना मार्मिक प्रसंग है । नवल उषा से कह रहा है -

"बेकार है उषा यह सब । मैं निराश होकर जेल नहीं जा रहा हूँ । जो रास्ता मैंने अपनाया है उसकी यह परिणति है । संघर्ष-संघर्ष-संघर्ष। जीवनभर संघर्ष । यह संघर्ष मेरे अन्दर की पुकार है उषा, और मैं जानता हूँ कि इस संघर्ष में तुम मेरा साथ नहीं दे सकोगी । इसलिए मैंने आते ही तुम्हें मुक्ति दे दी थी ।"

नवल की बात सुनकर उषा को एक धक्का-सा लगा "तो आप मेरे कारण जेल नहीं जा रहे हैं ?"

'बिलकुल नहीं" नवल बोला, "मैं केवल अपने कारण, अपने से प्रेरित होकर जेल जा रहा हूँ।"

नवल फिर से उठ खड़ा हुआ, "नहीं उषा, मैं तुमसे हमेशा के लिए विदा लेने, और तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करने आया था । अब शायद हम लोग फिर न मिलेंगे ।"[28]

कथानक में प्रेम प्रसंगो और मृत्यु की घटनाओं में मार्मिकता अधिक दिखाई देती है । अतः कथानक में मर्मस्पर्शी स्थलों की सफल अभिव्यक्ती होने के कारण 'भूले बिसरे चित्र' भावनात्मक संवेदना युक्त सफल कृति बन गई है ।

उपन्यास का अन्त :

उपन्यास की समाप्ति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यही वह अन्तिम छाप है जो पाठक के मानस को झकझोर देती है और चरमोत्कर्ष के बाद उपन्यास को पूर्णता प्रदान करती है । 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास के अन्तिम भाग में सब कुछ चरमसीमा पर पहुँच जाता है । नई पीढ़ी की मान्यताएँ एकदम बदल गई हैं । मध्यमवर्गीय नौकरशाही का बिलकुल ह्रास हो गया है । राष्ट्र की समस्त चेतना जाग उठी है, करोड़ो आदमी जीवन और गति से प्रेरित होकर, नवीन उमंग और उल्लास लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे हैं ।

उपन्यास का अन्त विद्या के नौकरी करने और नवल के नमक सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने और जेल जाने की तैयारी करने से होता है । उपन्यास के अन्त में भारत के उज्ज्वल भविष्य की आशा पाठक के अन्तर्हृदय में लहरें लेने लगती हैं । डा. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल का यह मत अधिक तर्कसंगत लगता है कि, "भूले बिसरे चित्र' की मूल-प्रेरणा अन्तिम चित्र में ही समाविष्ट है । एक परिवार के विभिन्न अंगों के चित्र भले ही उस तरंग में फीके पड़ जायें, परन्तु अन्तिम चित्र का प्रभाव स्थायी है ।"[29] उपन्यास के अन्त में ज्वालाप्रसाद और उसका परिवार नवल को विदा करते हैं । ज्वालाप्रसाद को नवल का जेल जाना कुछ अजीबसा लगता है । वह भीखू से कहता है -

"नहीं समझ में आ रहा है भीखू, यह सब क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है । ये तरह-तरह के चित्र आप-ही-आप बनते है और मिट जाते हैं, यह क्यों ?"[30]

वास्तव में यहीं पर उपन्यास की समाप्ति होती है । अगला अवतरण लेखकने अपनी ओर से जोड़ दिया है जो सही अर्थों में 'भूले बिसरे चित्र' के उपसंहार का लेखा - जोखा कहा जा सकता है -

"दो बूढ़े, जिन्हों ने युग देखा था, जिन्दगी के अनेक उतार - चढ़ाव देखे थे जिन्होंने, जिनके पास अनुभवों का भण्डार था, विवश थे, निरुत्तर थे । और दूर हजारों, लाखों, करोड़ो आदमी जीवन और गति से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लासंह लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे ।"[31]

इस प्रकार उपन्यास का अन्त स्वाभाविक, मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली है । उपन्यास का अन्त पाठक के अन्तर्मन को झकझोर देता है और उसके हृदय में एक प्रकार की गहरी टीस उठती है ।

निष्कर्ष :

'भूले बिसरे चित्र' के कथानक का विवेचन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि, उपन्यास का कथानक मिश्रित है जिसके निर्माण में इतिहास तथा कल्पना का योगदान रहा है । मानव जीवन की असाधारण व्याख्या लिए हुए 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास का कथानक एक विशिष्ठ गरिमा से मण्डित महाकाव्य के समकक्ष है । कथानक आद्योपान्त रोचक, कौतूहलवर्धक और प्रभावशाली रूप में चित्रित हुआ है । अपनी कुछ कमजोरियों के बावजूद भी इसकी एक सूत्रात्मकता बनी रही है । पाठक उसमें इस तरह खो जाता है कि उसे सब कुछ परिचित तथा अपने और अपने निकटतम पर गुजरता हुआ प्रतीत होता है । उसके सहज स्वाभाविक प्रवाह में अनेक प्रासंगिक कथाएँ सागर लहरों की तरह उठती और उसी में विलीन होती हैं । कुछ घटनाएँ और प्रसंग कथा - प्रवाह में शिथिलता भी लाते हैं । कथानक में 1885 से 1930 तक के लगभग पचास वर्ष के अर्धशती को सम्पूर्ण आयामों के साथ समग्रता से चित्रित करने का प्रयास किया गया है । लेखक को इसमें गजब की सफलता मिली है । उपन्यास के यत्किंचित दोष भी इसी प्रयास का परिणाम हैं । वास्तव में भगवती बाबू ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश को व्यापकता, गहनता और यथार्थता के साथ अंकित किया है । कथानक को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करने के साथ - साथ उसे चुस्त और पुष्ट बनाने का भरसक प्रयास

हुआ है । 'भूले बिसरे चित्र' मात्र एक परिवार की कथा नहीं है अपितु समस्त भारत वर्ष की पचास वर्षों की दास्तान है । कुल मिलाकर 'भूले बिसरे चित्र' का कथानक अपने आप में बेजोड़ है ।

* * *

संदर्भ - संकेत सूची

***

1. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 36
2. - वही - पृ. 114
3. - वही - पृ. 171
4. - वही - पृ. 707
5. गुप्ता सुषमा डा., हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना, पृ. 296
6. - वही - पृ. 298
7. - वही - पृ. 302
8. - वही - पृ. 299
9. शुक्ल बैजनाथ प्रसाद डा., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, पृ. 37।
10. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. ।
11. - वही - पृ. 36
12. - वही - पृ. 46
13. - वही - पृ. 419
14. वार्ष्णेय कुसुम डा., भगवतीचरण वर्मा, पृ. 114
15. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 36
16. - वही - पृ. 64
17. - वही - पृ. 131
18. - वही - पृ. 237
19. श्रीवास्तव रमाकान्त डा., व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, पृ. 131
20. लोधा अमरसिंह डा., प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, पृ. 272
21. श्रीवास्तव रमाकान्त डा., व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, पृ. 203
22. वार्ष्णेय कुसुम डा., भगवतीचरण वर्मा, पृ. 46

23. शुक्ल बैजनाथ प्रसाद डा., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ. 375-76

24. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 495

25. श्रीवास्तव रमाकान्त डा., व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतन के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, पृ. 213

26. वार्ष्णेय कुसुम डा., भगवतीचरण वर्मा, पृ. 50-51

27. वर्मा भगवतीचरण, भुले बिसरे चित्र, पृ. 100

28. - वही - पृ. 707

29. शुक्ल बैजनाथ प्रसाद डा., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, पृ. 388

30. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 712

31. - वही - 712

***